विवरण

छत्तीसगढ़ के बाल–खेल गीत

❑ मृणालिका ओझा

बाल खेल गीत बच्चों की ऐसी सांस्कृतिक विधा है जिसका सृजन खुद बच्चों ने ही किया है । ये विधा बच्चों से बच्चों तक प्रसारित होती एक अंचल से दूसरे अंचल तक पहुंचती है तो परिवर्तित - परिवर्द्धित भी होती जाती है । बच्चों से बच्चों में ही इसका पीढ़ीगत संतरण भी होता रहता है । जिन्हें हम 'बाल खेल गीत' कहते हैं उनमें खेल, नाट्य नृत्य, गीत और कविता जैसी विधाओं का सम्मिश्रण पाया जाता है ।

सृष्टि के प्रारंभ से अब तक विधाता की सबसे मनमोहक रचना है- ''बच्चा'' । बच्चे, देव-दानव सभी के मन को आकृष्ट करने की क्षमता रखते हैं । यह आकर्षण और भी कई गुणा बढ़ जाता है, यदि बच्चा खेलता और हंसता हुआ हो । आमतौर पर बड़ों के क्रियाकलाप की नकल ही, उनके खेल के सबसे अधिक रोचक विषय होते हैं । हम स्वयं भी अपने हाव भाव एवं कार्य शैली की महीनताओं की विवेचना इतनी कुशलता से नहीं कर पाते, जितनी कुशलता से ये बच्चे किया करते हैं । हमारे उठने-बैठने से लेकर बड़े से बड़े कार्यों में भी, हमारी शैलीगत विशेषताओं की पकड़ में बच्चे ही दक्ष होते हैं, और यह दक्षता प्राकृतिक ही है । इसकी नकल वे खेलों में करते है । यही कारण है कि कृषक का बच्चा खेल में कृषि जीवन की, गायक का संगीत की, खिलाड़ी का खेल की और शिक्षक का बच्चा पढ़ाने की नकल अवश्य करता है । यह नकल खेल के रूप में बच्चों द्वारा बच्चों के ही बीच में होती है, अत: ये थोड़ा बहुत रुपांतरित भी होती हैं । अन्य लोक कलाओं या विधाओं की तरह ये बाल खेल भी एक अंचल से दूसरे अंचल तक यात्रा कर लेते हैं । वे अपने अंचल के भाषिक एवं सांस्कृतिक प्रभावों से अछूते नहीं होते । भौगोलिकता और युगबोध भी इन्हें प्रभावित किये बिना नहीं रहते । बच्चे कई बार अपने बड़ों को भी अपने खेलों में सम्मिलित कर लेते हैं। अत: ये खेल बड़ों द्वारा भी आंशिक रूप से प्रभावित और रूपांतरित हो सकते है। इस तरह ये एक नियमित और व्यवस्थित रूप में परिणित भी हो जाते हैं । यही कारण है कि कुछ निश्चित खेलों को छोड़कर अन्य बाल खेल, कुछ अनगढ़ और अर्थहीन प्रतीत होते हैं । इन खेलों का यदि सूक्ष्मता से अध्ययन किया जाए और आंचलिक एवं भाषिक दृष्टि से ये कहां से आयातित हैं, इसकी विवेचना संभव हो जाए तो इनमें भी सार्थकता की पहचान की जा सकती है । इन बाल खेलों में से अनेक में बाल गीतों का भी प्रयोग होता है । जैसा कि पहले कहा जा चुका है, ये बच्चों के खेल गीत हैं, अत: इनमें सुर-ताल का अन्वेषण करना, विवेक-सम्मत नहीं है। बच्चों का मुख्य उद्देश्य होता है एक 'मुक्त आनंद' उन्हें जिस घटना, कार्य, बातचीत में आनंद मिलता है वे उसे ही अपनी क्रीड़ा के लिये चयनित कर लेते हैं । कुछ बाल-खेल-गीतों में समाज के ऐसे गंभीर तथ्य उद्घाटित होते हैं, जो आज भी विचारणीय हैं ।

इस संदर्भ में मेरा दृढ़ मत है कि अंचल की कुछ नृत्य-शैलियां भी बाल खेलों का विकसित रूप हैं । सूक्ष्मता से इनकी विवेचना करें तो एक तथ्य युक्त निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है। उदाहरण के रूप में छत्तीस गढ़ अंचल के सुवा-नृत्य को ही लें । सुवा-नृत्य, सुवा-गीत के साथ-साथ महिलाओं द्वारा प्राय: संध्या से रात्रि पूर्वार्द्ध तक किया जाता है । एक टोकरे में धान भरकर उसमें मिट्टी के छोटे छोटे सुग्गे (तोते) खोंच दिये जाते हैं । इसके चारों ओर घूम-घूमकर यह नृत्य किया जाता है । कृषि युग में पुरुष रात भर खेतों की रखवाली करते थे । सुबह होने पर वे अपने दैनिक कार्यों से निवृत्त होने के लिए घर आते थे । इस समय खान पान के अतिरिक्त इन्हें अल्प विश्राम की जरूरत होती थी । अत: खेतों की सुरक्षा के लिए वे महिलाओं को भेज दिया करते रहे होंगे । महिलाओं के साथ साथ उनके नन्हें मुन्हें बच्चे भी जाते रहे होंगे । महिलाएं तालियां पीट कर खेतों से तोते तो उड़ाती ही थीं, साथ ही अपने मनोभावों को, अपने-अपने घर के दु:ख सुख की भी अभिव्यक्ति करती थी । कालांतर में विकसित होता हुआ यह गीत समाज में सुवा-गीत के रूप में प्रचलित हुआ । इधर माताओं के साथ गये छोट-छोटे बालक अपनी माताओं की नकल करते रहे होंगे । घर आने पर उन्होंने धान से भरे पूरे खेत की जगह एक धान भरी हुई एक टोकरी ले ली । पौधों पर बैठे तोतों की जगह, छोटी लकड़ियों में खोंचे गये मिट्टी के तोते ले लिये और खेत की कल्पना को सार्थक बना कर धान की टोकरी में ही इन्हे खोंच दिया। फिर अपनी माताओं की तरह ताली पीट पीट कर उसके चारों ओर गाने और घूमने का उपक्रम करने लगे होंगे । घर के काम से निवृत्त होकर बच्चों की जिद पर उनकी माताएं भी उनके साथ शामिल हो गई होंगी । सुवा नृत्य में पैरों की ताल भी मानों इस बात की घोषणा

करता है कि नृत्य को अधिक देर तक करते रहने के प्रयास में ये कदम उठते हैं । इसको गाने की प्रक्रिया भी कुछ इसी तरह है कि एक ने (वर्तमान में आधी टोली) बोल गाया फिर शेष सबने उसे दोहराया । ठीक इस तरह कि जैसे मां ने कोई गीत गाया और नाचते गाते आनंदित बच्चों ने उसे दोहरा लिया हो। अत: कुल मिलाकर इस पूरे नृत्य एवं उसकी पृष्ठभूमि पर दृष्टि डालने पर यह बात तय हो जाती है कि सुवा-गीत से बाल खेल-गीत और फिर बाल खेल-गीत ही विकसित होकर सुवा नृत्य के रूप में प्रचलित हो गया।

इसी तरह एक विहंगम एवं शोध दृष्टि यदि पंथी नृत्य पर डालें तो यह आखेट श्रेणी का बाल खेल+नृत्य प्रतीत होता है, जो विभिन्न युग के गीतों और संदर्भों से जुड़ता हुआ एक विशिष्ट नृत्य-गीत-शैली के रूप में विकसित हो गया । बाबा घासीदास जी का अत्यधिक अमिट प्रभाव समाज पर पड़ा, और उनके ज्ञानोपदेश भी इस लोकप्रिय शैली में समाहित हो गये और समाज को ऊर्जस्वित करने लगे । इस नृत्य में नर्तक के पगताल साहसपूर्ण, आक्रामक और तेज गति से पीछा करते हुए प्रतीत होते हैं । इस नृत्य में बड़े घेरे का छोटा होता जाना, तेज ढोल, नगाड़े का बजना, हिंसक जन्तुओं जैसी स्फूर्ति और तेजी के साथ एक दूसरे के कंधों पर चढ़ना, उतरना तथा नृत्य की द्रुत लय एवं ताल ये सभी इसके प्रमाण हैं ।

आशय यही है कि बालगीत आज के संदर्भ एवं परिप्रेक्ष्य में अनगढ़ एवं निरर्थक़ प्रतीत हो सकते हैं, परन्तु जिस काल में जिस क्षेत्र एवं बोली में वे निर्मित हुए होंगे, उन्हीं परिदृश्यों के अन्तर्गत यदि उनका मूल्यांकन एवं विवेचन करें तो वे अवश्य सार्थक प्रतीत होंगे । यहां कुछ बाल खेल जिनमें बालगीत संश्लेषित हैं, उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है -

(1) अत्तल के रोटी, पत्तल के दाल ।
खावथै छक के, गोंदली पताल ।
मारिस थपरा, उड़ागे बाल ।

इन पक्तियों पर गौर करने पर जो दृश्य सामने आता है -वह यह हो सकता है, जैसे अंत में बची हुई रोटियां, पत्तल पर छोड़ी गई जूठीं दाल और गोंदली, पताल (प्याज-टमाटर की चटनी) किसी ने खा लिया हो । उसे फिर इस दुस्साहस के लिये बुरी तरह पीटा गया हो । उसके सिर के बाल तक उखड़ गये हों । यह सामंत कालीन मजदूर या बाल मजदूर का लघु दृश्य चित्रित करता है जो अत्यंत मार्मिक है। बाद में यह घटना अन्य लोगों को चेतावनी के तौर पर बार बार बताई गई हो और जो कालांतर में बाल खेल के रूप में विकसित हो गई हो ।

(2) फुगडी फू रे भई फूगड़ी फू
गोबर दे बछरु गोबर दे,
चारों खूट ल लीपन दे ।
चारों देरानी (देवरानी) ल बइठन दे ।
अपन खाथै गूदा-गूदा,
मोला देथे बीजा-बीजा ।
ये बीजा ल का करहूं
तेकर ले रहि जाहूं तीजा ।
आहूं-तीजा-पोरा त,
तीजा के बिहान में
पाथंव खादी नानी के लुगरा
खोल दे वो भउजी, कपाट के खीला ।
कपाट के खीला, खोल दे वो भउजी।
चींव चांव करथे, मजूर के पिला ।
एक गोड़ में लाल भाजी, एक गोड़ में खजूर ।
कतेक ल मानंव मैं ह देवर ससुर
मारे भउजी हारे रे /लीम तरी पसारे रे
लीम मोर भइया/तैं मोर भउजइया ।

इस खेल को बालिकाएं खेलती हैं । इसके गीत में मायके आयी हुई एक बेटी की व्यथा कथा है । उसे घर लीपने का कार्य सौंपा गया है, वह बछड़े से अनुनय करती है कि इतना गोबर देना जिससे चारों भावजों का कमरा (खोली) लीपा जा सके । ये भावजें अच्छा-अच्छा, सार-सार भोजन तो खुद करती हैं, और फेंकने योग्य बचा-खुचा जैसा बीज या छिलका मुझे देती हैं। इस बीजा (फेंकावन) को मैं क्या करुंगी ? इससे तो तीजा पोरा पर मैं मायका आती हूं तो भी मुझे क्या मिलता है ? दूसरे दिन सुबह खादी की मोटी-छोटी साड़ी ही तो मिलती है । अरे भौजी, तुमने बीच का दरवाजा बंद किया है और माल-टाल उड़ा रही हो, तो इसकी सांकल खोल दो। इधर देखो मेरे मयूर बच्चे भूख से कुलबुला रहे हैं । यह कड़वी सच्चाई किस-किस (देवर-ससुर से छिपाऊं) ? मायके आने का सुख एक ओर लाल भाजी की तरह नरम और स्वादिष्ट (सुखद) है, दूसरी ओर खजूर की तरह चुभने वाला अर्थात् पीड़ादायी है ।

बाद की पंक्तियों में प्रताड़ना का अधिक भीषण दृश्य चित्रांकित हुआ है । बेटी हार गई है । भावजों ने उसे पीटा और घर से निकाल दिया है। वह नीम की छांव में समय काट रही है । यह नीम का वृक्ष भी भाई की तरह है जो कठिन समय में आज काम आया है और ताप हर रहा है । अंत में हास्य उत्पन्न करने के लिए किसी का भी नाम लेकर ''तैं मोर भउजइया'' कहकर चिढ़ाया जाता है ।

एक खेल गीत इस प्रकार है -

(3) घउंआ घू, आ रे बछरु
दूधियर गइया, मेठरावे बछरु ।

कौने खाय दूध-भाता ?
कौने चाटय मीठा पाता ?
भुनुवा खाय दूध-भाता ।
दुखरू चाटय मीठा पाता ।
नवा राजा आय/जुन्ना राजा जाए ।
नवा घर उठय / जुन्ना घर फूटय ।

इस खेल गीत में अंतिम दो पंक्तियों के साथ-साथ बच्चे को घुटने पर उठा लिया जाता है और फिर नीचे उतार दिया जाता है। इस गीत में व्यवस्था के प्रति असंतोष-जन्य पीड़ा और अंत में दमित इच्छा का प्राकट्य दिखाई पड़ता है। दृश्य इस प्रकार निर्मित हो रहा है - गाय की सेवा करने वाला कोई विवश (नौकर) है जो इधर उधर चौकड़ियां भरते बछड़े को देखकर कह रहा है - ''गाय तो दुधारी है और बछड़ा आनन्द मग्न । इसका दूध किसे मिलता है ? कौन दूध-भात खाता है ? दूध-भात तो मुनुवा (मालिक का बेटा) खाता है और दुधरु (गाय की सेवा करने वाले का बेटा) तो केवल जूठे पत्तल की मिठास चाट कर रह जाता है । अत: कामना की जाती है जल्दी से पुराने राजा का अवसान हो और नया राजा आ जाए । पुराना घर टूट जाए और नया घर बन जाये ।

इसी तरह ''लंगड़ी घोड़ी टांग तोड़ी, बारह बच्चे लेकर दौड़ी'' यह भी अधिक बच्चों वाली मां के लिए व्यंग्य है, जो कहीं भी जाती है तो उसके साथ बारह बच्चे भी पीछे-पीछे जाते हैं । ऐसा घर लोक के हास्य व्यंग्य का निशाना बनता है । नकल करने और चिढ़ाने का काम बच्चे बखूबी करते हैं । अत: यह उनके बाल-खेल ''लंगड़ी'' में हास्य विनोद प्रदान करने वाला बाल-गीत के रूप में संयुक्त हो गया ।

कुछ खेल गीतों में प्रकृति का संक्षिप्त किन्तु मनोहारी वर्णन भी मिलता है । इनको गाकर बच्चे झूमते-नाचते हैं । बच्चों के लिये यह छोटा-सा प्राकृतिक चित्रण भी कम मायने नहीं रखता है ।

''झूमर जा रे पड़की, झुम्मर जा ।
सावन में ओर-दोर ।
पानी मारै हिलोर ।
नदिया केकोर-खोर/नावे में डुबुक डोर ।
गोकुल के भोर सोर/ जुमना लागे चभोर॥
झमर जा रे पड़की, झुम्मर जा ।

इसी तरह का दूसरा खेल गीत इस प्रकार है -
अटकन बटकन दही चटाका
लहुआ लाटा, बन के कांटा ।
सावन मं करेला फूले ।
चल-चल बिटिया गंगा जाबो ।
गंगा ले गोदावरी।।
पाका-पाका बेल खाबो
बेल के डारा टूटेंगे ।
भरे कटोरा फूटगे ।

एक बाल खेल गीत बड़ा ही प्यारा है । किसी समय जब राज घरानों या संपन्न घरानों के राजकुमारों को लोग पालकी में बैठाकर ले जाते थे । तब सड़क-गली-कूचे में खेलते बच्चे उन्हें आश्चर्य चकित होकर देखते थे । उनके अंतकरण में भी पालकी में बैठने की इच्छा बलवती होती थी । ऐसा ही आल्हाद अपने से छोटे नन्हें मुन्हें बच्चों को प्रदान करने की प्रेरणा ने इस बाल खेल का सृजन किया होगा -

जै कन्हैया लाल की,
हाथी घोड़ा पालकी ।

इस खेल में दो बच्चे आमने सामने खड़े होकर अपने हाथ इस प्रकार फंसाते हैं कि वह एक बच्चे के बैठने के लिए (पालकी की तरह) काफी होता है । तीसरा बच्चा इसमें पैर फंसा कर बैठ जाता है । बच्चे पालकी उठाने की तरह धीरे धीरे सम्हालते हुए तीसरे बच्चे को उठाते हैं, और एक जगह से दूसरी जगह ले जाकर उसी सावधानी से उतारते हैं । बाल मन की दमित इच्छाएं भी इसी तरह खेल और खेल गीत में परिणित हो जाती हैं । जिसे देखकर किसी भी संवेदनशील व्यक्ति के होठों पर अनायास मुस्कान तिर जाती है।

केंउ-मेंउ मेकरा के जाला, कन्हैया गावे आल्हा भुर्र-बटई ।

यह भी किसी आलसी पहरेदार की लापरवाही को चित्रित करता है । कुछ खेल गीत जरूर ऐसे लगते हैं कि वे अनगढ़ या अर्थहीन हैं, किन्तु यदि ठीक ठाक यह पता चल जाए कि वे किस प्रदेश से आयातीत हैं, तो हो सकता है कि उनमें भी भौगोलिक ऐतिहासिक या सांस्कृतिक सार्थकता की खोज की जा सके । छत्तीसगढ़ अंचल में अनेकानेक खेल गीत बिखरे पड़े हैं इन्हें निरर्थक न समझकर, इनका भी संकलन होना चाहिये । मुझे पूरा पूरा विश्वास है कि जिस तरह बोली के बाद गीतों का विकास हुआ है, ठीक इसी तरह बाल खेलों के बाद, बड़ों के नृत्य एवं नाट्य विधाओं का विकास हुआ । बच्चे व्यक्ति परिवार और समाज की हर घटना का सूक्ष्म निरीक्षण बाल दृष्टि से करते हैं । वे उसे और उसके बाल विषय वस्तु को अपने बाल भावों के अनुसार निश्चय ही अपने बाल खेलों और बाल गीतों में समावेशित कर लेते हैं । बाद में उत्तरोत्तर विकसित होता हुआ एक ओर नृत्य और नाट्य विद्या में और दूसरी ओर समय के साथ विघटित होता हुआ एक संक्षिप्त अनगढ़ बाल खेल के रूप में शेष रह जाता है इस दृष्टि से ''बाल खेल गीत'' भी अनेक सामाजिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक तथ्यों को उद्घाटित करते हैं । इनमें सौम्य हास्य-व्यंग्य भी निहित होते हैं । आवश्यकता है केवल पूर्वाग्रह रहित कठिन श्रम और शोध दृष्टि की। ◆